दूसरी ओर, भलीभाँति स्वधर्माचरण करते हुए भी अभक्त को कोई लाभ नहीं हो सकता।'' लौकिक लाभ के लिए अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक क्रियाओं का विधान है। परमार्थ, अर्थात् कृष्णभावना में उन्नति करने के लिए यह आवश्यक है कि योगी सब सांसारिक क्रियाओं को त्याग दे। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि कृष्णभावना की पूर्णता होने पर तो परम सिद्धि हो सकती है; परन्तु जो इस संसिद्धि को प्राप्त नहीं हो सके, उसकी तो लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार से हानि हो जायगी। शास्त्र का विधान है कि स्वधर्म के आचरण में प्रमाद के दोषी को पापफल अवश्य भोगना पड़ता है। परन्तु परमार्थ सम्बन्धी साधन के अपूर्ण रह जाने पर प्रमाद-दोष नहीं बनता। श्रीमद्भागवत आश्वस्त करती है कि अकृतार्थ योगी के लिए चिन्ता का कोई युक्तिसंगत कारण नहीं है। स्वधर्म-पालन में प्रमाद का दोषी होने पर भी वह क्षतिग्रस्त नहीं होगा, क्योंकि परम कल्याणकारी कृष्णभावना के अल्प साधन का भी कभी नाश नहीं होता। इसके परायण पुरुष जन्मान्तर में निम्न योनि को प्राप्त होने पर भी पहले की ही भाँति भक्ति करता है। इसके विपरीत, जो केवल दृढ़तापूर्वक स्वधर्म का आचरण करता रहता है, उस कृष्णभावनाविहीन को कल्याण की प्राप्ति निश्चित नहीं है।

इस श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार समझा जा सकता है। मानव समाज में संयमित और उच्छृंखल, मनुष्यों की ये दो श्रेणियाँ हैं। पुनर्जन्म और मुक्ति के ज्ञान के बिना पशु के समान इन्द्रियतृप्ति में लगे मनुष्य दूसरी श्रेणी में आते हैं। संयमित मनुष्यों की श्रेणी में वे हैं जो शास्त्र के अनुसार स्वधर्म का आचरण करते हैं। सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, बलिष्ठ अथवा दुर्बल—सभी प्रकार के असंयमित मनुष्यों में पशुओं के योग्य वृत्तियों की प्रबलता रहती है। उनकी क्रियाएँ कल्याणकारी नहीं होतीं, अतः आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन जैसी पशुतुल्य वृत्तियों का उपभोग करते हुए वे सदा दुःखमय भवरोग से पीडित रहते हैं। दूसरी ओर, शास्त्र के अनुसार संयम का अभ्यास करने वाले शनैः-शनैः कृष्णभावनाभावित हो जाते हैं और जीवन में निश्चित रूप से उन्नति करते हैं।

कल्याण-मार्ग के पथिकों के तीन वर्ग हैं: (१) सांसारिक समृद्धि के लिए शास्त्रोक्त विधि-विधान का पालन करने वाले, (२) भवरोग से मुक्ति के लिए साधन करने वाले तथा (३) कृष्णभावनाभावित भक्त। जो सांसारिक सुख के लिए शास्त्रीय विधान का पालन करते हैं, उनकी दो उपश्रेणियाँ हैं: सकाम कर्मी और इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से रहित। इन्द्रियतृप्ति के लिए सकाम कर्म करने वालों को उच्च लोकादि की प्राप्ति हो सकती है, पर संसार से मुक्त न होने के कारण वे वास्तव में कल्याण-पथ पर नहीं चल रहे हैं। केवल मुक्ति की ओर ले जाने वाली क्रियाओं को ही कल्याणकारी कहा जा सकता है। स्वरूप-साक्षात्कार अथवा देहात्मबुद्धि से मुक्ति के लक्ष्य को लेकर न की गई कोई भी क्रिया कल्याणकारी नहीं हो सकती। कृष्णभावनाभावित क्रिया ही कल्याणप्रद कर्म है। जो इस भक्ति-पथ में प्रगति के लिए स्वेच्छापूर्वक सब प्रकार